InternatIonal Journal of Advanced EducatIonal Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educatIonjournal.org
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 129-133

युद्ध दर्शन का काव्य: कुरुक्षेत्र

डॉ. योगेश राव

पी-एच.डी. (हिन्दी साहित्य) लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ, भारत।

प्रस्तावना

'कुरुक्षेत्र' सात सर्गो में निबद्ध एक प्रबन्ध-कविता है । द्वितीय विश्व युद्ध का प्रलयंकारी रुप देखने के बाद सन 1946 ई. में दिनकर ने इस काव्य की रचना की । वरिष्ठ आलोचक खगेन्द्र ठाकुर इस सन्दर्भ में 'दिनकर की काव्य चेतना: पुनर्मूल्यांकन' नामक आलेख में लिखते हैं -"कुरुक्षेत्र के रचना काल में दिनकर बिहार सरकार के प्रचार विभाग और जनसम्पर्क विभाग में पदस्थापित थे । इस दौर में कुरुक्षेत्र की रचना करने के साथ ही उन्होंने विश्वस्तर की कविताओं का अध्ययन किया । डी.एच. लारेंस, जेम्स ज्वायस, टी.एस. इलियट, रिल्के आदि अनेक कवियों का अध्ययन किया और उनसे प्रभाव ग्रहण किया । वे स्वयं कहते हैं- 'ज्यों ज्यों मैं संसार की कविताओं से परिचित होता गया मेरी अपनी कविताओं की अदाएं बदलती गयी ।' (रश्मिलोक की भूमिका) दिनकर सर्जनात्मक दृष्टि से तो एक संवेदनशील कवि हैं ही कविता के इतिहास और स्वरुप के गम्भीर अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत जागरूक और विवेकशील हैं, इसलिए वे अपने कवित्व के लिए स्थायी या श्रेष्य काव्य प्रसंग खोजते रहें हैं ।"[1] कवि के इसी खोज की परिणति हैं कुरुक्षेत्र । युद्ध और शांति इस काव्य का मूल विषय रहा है ।

इसके कथानक का मूल आधार महाभारत है । महाभारत के 18 पर्वों की विस्तृत कथा को न लेकर कवि ने अपने काव्य का आधार इसकी, शांति-पर्व से लेकर उद्योग-पर्व तक की कथा को बनाया है । महाभारत के 'सौप्तिक पर्व' में जब युधिष्ठिर अपने मृत सम्बन्धी का अंतिम संस्कार करने लगते हैं तो उन्हें ज्ञात होता है कि कर्ण उनके अग्रज थे । उनका मन ग्लानि से भर उठता है । शांति पर्व में वे नारद के समक्ष अपने मन की ग्लानि व वेदना प्रकट करते हैं । वे युद्ध की घोर निंदा करते हुए, रक्त से सने राज्य का परित्याग कर वन की ओर जाना चाहते हैं, परन्तु बाद में कृष्ण, अपने सभी भाइयों और द्रौपदी के प्रतिरोध से विवश हो, हस्तिनापुर आकर राज्य ग्रहण करते हैं । इसके बाद वे कृष्ण की प्रेरणा से राजधर्म का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने भीष्म के पास जाते हैं । युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश देते हुए भीष्म, उनके मन में उपजी युद्धजन्य ग्लानि को क्षणिक और अज्ञानजन्य वास्तु सिद्ध करते हैं । महाकवि दिनकर ने आज के युद्ध संत्रस्त युग चेतना के अनुरूप महाभारत के उपर्युक्त कथांश को ही ग्रहण किया है । महाभारत को पृष्ठभूमि में रखते हुए दिनकर ने कुरुक्षेत्र में युगानुरूप युद्ध के कारणों, उनके परिणामों तथा इसके समाधान से सम्बंधित अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है ।

आलोचक खगेन्द्र ठाकुर आगे अपने लेख में उद्धृत करते हैं- "सामधेनी में ही 'कलिंग विजय' कविता है, जो कुरुक्षेत्र की रचना का संकेत देती है और कवि का भी आग्रह है कि कलिंग विजय को कुरुक्षेत्र के साथ मिला कर पढ़े । कलिंग विजय में हिंसा के ऊपर अहिंसा को वरीयता या प्राथमिकता दी गयी है मनुष्यता के हित में लेकिन कवि हिंसा और अहिंसा के द्वंद्व से मुक्त नहीं हो पाया और कुरुक्षेत्र में आकर कवि हिंसा का निषेध नहीं करने की स्थिति में आ जाता है । क्योंकि मनुष्य को न्याय चाहिए और उसके लिए हिंसा भी हो सकती है । 'सामधेनी' में एक कविता है- अंतिम मनुष्य । इस कविता में कवि कहता है-

सारी दुनिया उजाड़ चुकी है गुजर चुका है मेंला;
ऊपर है बीमार सूर्य नीचे मैं मनुज अकेला ।

यह कैसी भाव दशा है... दिनकर की भाव दशा या काव्य चेतना में आये मोड़ की एक विशेषता यह भी है की वे छोटे या तात्कालिक प्रश्नों को छोड़कर बड़े और दीर्घकालिक प्रश्नों से जूझने लगते हैं । कुरुक्षेत्र इसी क्रम की पहली रचना है, कुरुक्षेत्र प्रबंध कविता है, लेकिन उसमे प्रबंधात्मकता नहीं के बराबर है ।"[2]

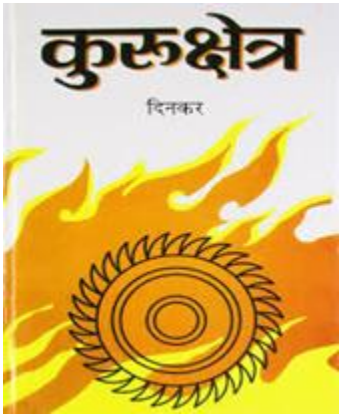

अब कुरुक्षेत्र के कथासूत्र का मूल्यांकन किया जाये तो इसकी कथा अत्यंत संक्षिप्त है । पूरे काव्य में कवि के विचारों की ही प्रधानता है । कहीं-कहीं तो कवि युद्ध सम्बन्धी अपने विचारों के उहापोह में इतना खो जाता है कि कथा ज्यों कि त्यों ठहर सी जाती है । कुरुक्षेत्र का छठां सर्ग ऐसा ही है ।

युद्ध के भीषण परिणामों से व्याकुल युधिष्ठिर, शरशैय्या पर पड़े कालजयी वीर भीष्म के पास पहुँचाते हैं । वे युद्ध से उत्पन्न अपने मन की ग्लानि और वेदना पितामह के समक्ष व्यक्त करते हैं । भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हुए कहते हैं- युद्ध अवश्यंभावी था- उसे रोका नहीं जा सकता था । युद्ध का कारण तुम नहीं- बल्कि स्वार्थ, राजनीतिक प्रवंचना और प्रतिशोध रहे हैं । युद्ध का कारण कौरवों द्वारा पांडवों का किया गया अपमान था । भीष्म बताते हैं कि तप, त्याग, ममत्व और करुणा युद्ध के निवारक बन सकते हैं, पर ये व्यक्तिगत धर्म हैं और युद्ध सामाजिक धर्म हैं जो सामूहिक उत्थान के लिए, कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है । पाशविकता के समक्ष आत्मबल टिक नहीं पाता । कुरुक्षेत्र के प्रारंभिक दो सर्गो का यही कथ्य है ।

तृतीय सर्ग में भीष्म युद्ध और शान्ति की समस्या पर विचार करते हैं । शांति सब चाहते हैं, पर विवश होकर ही व्यक्ति या समूह युद्ध में लगता है । शांति दो प्रकार की होती है- कृत्रिम और अकृत्रिम । कृत्रिम शांति का आधार अन्याय और शोषण है । अकृत्रिम शांति ही वास्तविक शांति है, इसका आधार प्रेम और अहिंसा है । सत्ताधारी वर्ग सदैव दमन द्वारा शांति बनाये रखना चाहता है । इसी दमन के विरोध में जनसामान्य क्रांति की ओर झुकता है और युद्ध अवश्यंभावी हो उठता है । युद्ध के लिए उत्तरदायी होता है सत्ताधारी आततायी वर्ग । शांति चाहने वाला वर्ग, इसी वर्ग से प्रतिशोध के लिए लड़ता है । भीष्म युधिष्ठिर की ग्लानि दूर करते हुए कहते हैं- युधिष्ठिर प्रतिशोध से शौर्य की शिखाएँ जल उठती हैं । प्रतिशोधहीनता महापाप है । अन्याय और शोषण से प्रतिशोध किये बिना न्याय और समता की स्थापना संभव नहीं । न्याय और समता ही शांति की दृढ़ आधारशिला है ।

चतुर्थ सर्ग में भीष्म युद्ध का पूरा उत्तरदायित्व कौरवों पर डालते हैं । पांडवों को वे न्याय के लिए लड़ने वाला सिद्ध करते हैं । किन्हीं स्थितियों में तो वे खुद को भी युद्ध के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं । वे कहते हैं कि मेरे हृदय और कर्त्तव्य-बुद्धि में संघर्ष था । हृदय पांडवों की ओर था कर्त्तव्य-बुद्धि कौरवों की ओर । इस संघर्ष में कर्त्तव्य-बुद्धि विजयी रही । मैं एक बार भी यदि दुर्योद्धन को डांट देता तो वह पांडवों से बैर न साधता और यह भीषण युद्ध न होता । युधिष्ठिर ! बीती बातें सोचना व्यर्थ है । सब कुछ भूलकर तुम अब एक नए युग का सूत्रपात करो ।

पंचम सर्ग में कवि महाभारतकालीन समाज की भीषण परिस्थितियों का अंकन करते हुए कथा आगे बढ़ाता है युधिष्ठिर भीष्म की बातों के उत्तर में कहते हैं कि कुछ भी हो, युद्ध का कारण मैं तो अपना राज्य-लोभ ही मानता हूँ । पितामह ! अब मैं इसी लोभ से महासमर करूँगा । भीष्म उन्हें आशीष देते हैं कि हे युधिष्ठिर ! निश्चित ही तुम नवधर्म का दीप जलाओगे ।

षष्ठ सर्ग में कवि द्वापर और वर्तमान युग को सामानांतर रख युद्ध की भीषण समस्या आने पर अपने विचार प्रस्तुत करता है । कवि भगवान से पूछता है कि धरती के दाहक युद्ध कब बंद होंगे, कब धरती पर शान्ति एवं स्नेह की कोमलधारा प्रवाहित होगी । भीष्म, युधिष्ठिर, बुद्ध, अशोक, ईसामसीह सभी की शांतिमय वाणी को स्वीकार करता हुआ भी आज का युग उनके आदर्शों पर नहीं चल पा रहा है । वह आज भी ईर्ष्या-द्वेष के पुराने मार्ग पर चला जा रहा हैं । आज का युग द्वापर की भातिं बेबस भी नहीं इस युग के मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर संसार के सारे रहस्यों का भेदन कर लिया हैं । धरती, आकाश, सागर सर्वत्र उसकी गाति है । जल, वायु,अग्नि,विद्युत् सभी शक्तियां उसकी गुलाम हैं । पर खेद है कि उसकी बुद्धि-मात्र ही विकसित हुई है, उसका हृदय निरंतर संकुचित ही हुआ । विज्ञान के साधनों से संपन्न इस युग का मानव युद्ध और संहार का प्रिय बनता जा रहा है । वह धरती के दाह की चिंता न करता हुआ, अन्य ग्रहों की खोज में दत्तचित है । वह वासना का दास बनता जा रहा है । विज्ञानं का लक्ष्य तो संसार में समरसता स्थापित करना है, विरोध और घृणा नहीं । कवि भगवान से पूछता है कि की साम्य की स्निग्ध एवं उदार किरण से धरती कब सरस होगी ।

कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग फिर कथा का छोर पकड़ लेता है । भीष्म युधिष्ठिर को बताते हैं कि पाप-पुण्य, उत्थान और पतन एक साथ ही रहते हैं । कुरुक्षेत्र का युग विनाश नहीं निर्माता की पृष्ठभूमि बनेगा । आगे आने वाला युग इससे सबक सीखेगा कि सामान अधिकार के वितरण द्वारा ही समाज में सच्ची शान्ति स्थापित की जा सकती है । शान्ति के लिए शोषण की समाप्ति अनिवार्य है । अंत में पितामह युधिष्ठिर को सन्यास-ग्रहण से विरक्त करते हुए कहते है- धर्मराज सन्यास समाज से पलायन है, दुखों का अंत नहीं । साहसी व्यक्ति वही है जो संसार में रहकर सुख-दुःख दोनों का भोग धैर्यपूर्वक करे । धर्मराज ! आशा के दीप जलाये चलो । एक दिन यह धरा युद्ध की विभीषिका से अवश्य मुक्ति होगी । हार से न मनुष्य घटता है, न जीत से से बढ़ता है । स्नेह और बलिदान से ही यह धरती स्वर्ग बन सकेगी ।

मार्क्सवादी समीक्षक चन्द्रबली सिंह कुरुक्षेत्र के विषय में लिखते हैं- "कुरुक्षेत्र में कवि की चेतना स्पष्ट और सबल बनकर आई है । 'कुरुक्षेत्र', कवि के कथनानुसार, महाभारत की पुनरावृत्ति नहीं । उसमे कुरुक्षेत्र की पीठिका में वर्तमान राजनीतिक और सामाजिक समस्यायों का समाधान उपस्थित किया है... इस प्रकार हिंसा और अहिंसा की प्रवंचना और व्यामोह में पड़े हुए अपने देश-वासियों के लिए कवि का यह दृष्टिकोण । दूसरी बात है की कुरुक्षेत्र में उसकी 'हुंकार' वाली साम्य की धुंधली चेतना अब बिलकुल निखर कर आती है और कवि उसकी चर्चा केवल चलते ढंग से ही न कर उसके अनेक पहलुओं पर विचार करता है । षष्ठ सर्ग के अंत में वह इस प्रकार प्रार्थना करता है:

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान ?"[3]

इसी सन्दर्भ में वे आगे लिखते हैं- "वह युद्ध की समस्या पर विचार कर इस निष्कर्ष पर आता है कि उसका अंत एक नवीन न्यायाश्रित समाज के निर्माण के बिना नहीं हो सकता । युद्ध को रोकना है तो संसार में चलते हुए शोषण और पूंजीवाद को ख़त्म करना अनिवार्य है:

वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो;
राह रोकता है जो मही का भीमकाय वृक्ष
उसकी शिराएं तोड़ो, डालियां कतर दो ।"[4]

अपने आलेख 'राष्ट्रवाद, नया मनुष्य और दिनकर' में प्रख्यात आलोचक शम्भुनाथ का कथन है- "दिनकर के काव्य कुरुक्षेत्र की पृष्ठभूमि में दूसरा विश्वयुद्ध और हिरोशिमा-नागासाकी शहर थे । इस युद्ध ने आधुनिक मनुष्य को विज्ञान और मानव जीवन के प्रति संशयशील बना दिया था । दिनकर इस कृति में युद्ध की निस्सारता बताते हुए जीवन-उन्मुखता और कर्म का दर्शन देते हैं । युधिष्ठिर का पश्चाताप युद्ध-विरोधी मन की पीड़ा है- 'यह महाभारत वृथा निष्फल हुआ । उफ ज्वलित कितना गरलमय व्यंग है ।' विश्वयुद्धोत्तर स्थितियों ने समाज में बहुत निराशा फैला दी थी । युधिष्ठिर आत्मनिर्वासन झेल रहे थे । वे कर्महीन चिंतन में लिप्त थे । दिनकर ने पारलौकिकता और जीवन में विराग का हमेशा विरोध किया । वे जीवन के कवि हैं, वे घर के कवि हैं । वे शर शैय्या पर पड़े भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं-

> ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है कुछ भी नही गगन में ।
> धर्मराज ! जो कुछ है, वह है मिट्टी में जीवन में ।।"[5]

इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' युद्ध के दर्शन का काव्य हैं । द्वापर की पृष्ठभूमि लेते हुए भी यह काव्य विसंगतिग्रस्त वर्तमान युग की 'युद्ध-गीता' है । युद्ध पहले भी हुए हैं, उनसे व्यक्ति और समाज ने बहुत-कुछ सीखा है । पुनः युद्ध न हों, इस ओर प्रयास भी किये गये हैं, पर युद्ध होते रहे हैं, होते रहेंगे । सामूहिक मनोविज्ञान जब-जब विकृत होगा, शोषण द्वारा समान अधिकारों का जब-जब हनन होगा, प्रतिशोध स्वरूप युद्ध होंगे । और इनमें हुए विनाश की गोद से ही नवीन युग का सूत्रापात होगा । इस तरह युद्धों के रुप में इतिहास वेश बदलकर बार-बार अपने को दुहराता रहेगा । दूसरे शब्दों में युद्ध शाश्वत तथ्य है, व्यक्ति या समाज उससे बचना चाहकर भी उसके समीप खिंचते रहेंगे, कुरुक्षेत्र का यही मूल प्रतिपाद रहा है ।

कुरुक्षेत्र का मूलरस वीररस है । वीभत्स, भयानक, रौद्र, करुण तथा शान्त रसों की व्यंजना भी यथास्थल हुई है । कुरुक्षेत्र ओज-गुण प्रधान काव्य है । इसी के अनुरूप प्रकृति के शक्तिमय चित्रों का भी आकलन हुआ है । इसकी भाषा साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी है । सुन्दर शब्द-चयन, लोकोक्तियों और मुहावरों का कलात्मक प्रयोग, प्रसंगानुकूल कोमल एवं कठोर पदावली का विन्यास, चित्रोपमता तथा लाक्षणिकता आदि कुरुक्षेत्र की भाषा की अपनी विशेषताएं हैं । भाषा के सरल और कठिन दोनों ही रूप इस काव्य में मिलेंगे । अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, अतिश्योक्ति, असंगति, अपन्हति, विरोधाभास, दृष्टान्त, सहोक्ति, उल्लेख आदि के सुन्दर प्रयोग 'कुरुक्षेत्र, में ढूंढे जा सकते हैं । विशेषता की बात यह है कि इन अलंकारो का प्रयोग कहीं भी सायास न होकर अत्यंत सहज और स्वाभाविक है । छंदों में सार, रूपमाला, राधिका, सरसी, वीर, सवैया (दुर्मिल), कुन्दलता, रूपघनाक्षरी, कवित्त आदि के प्रयोग सराहनीय हैं । इस काव्य के खड़ी बोली में लिखे हुए कवित्तों के समक्ष ब्रजभाषा के कवित्त अपनी मिठास त्याग देने वाले हैं ।

महाकवि दिनकर मानो अपनी कविता के मर्म को बतलाते हुए अपनी आलोचना की पुस्तक 'मिट्टीकी ओर' में इस प्रकार लिखा है- "वास्तविकता के संघर्ष में असंतोष की जो चिनगारी उड़ती है, वही मेरा स्वप्न है । युगों के दर्पण में कविताकामिनी का अपार्थिव रूप देखकर शून्य में पंख खोलकर उड़ने की इच्छा जरूर हुई; परन्तु इस देश की अपमानित मिटटी का प्रभाव कहिए या मेरा अपना भाग्यदोष की कल्पना के नंदनकानन में भी मिटटी का गंध मेरा पीछा नहीं छोड़ सकी, जब तक सत्य का आधार नहीं मिला, स्वप्न के पैर डगमगाते रहे । यह कह दूं तो मंतव्य अधिक स्पष्ट हो जाए कि देशमाता का शस्यश्यामल अंचल सिर्फ इसीलिए सुन्दर नहीं लगा चूंकि उसमें प्राकृतिक सुषमा बिखर रही है । वरन, इसीलिए की उसके साथ भारतीय किसानों का श्रम, उनकी आशा और अभिलाषाएं लिपटी हुई हैं ।"[6]

चन्द्रबली सिंह हिंदी साहित्य के सूर्य 'दिनकर' के सन्दर्भ में पुनः लिखते हैं- "जिस कवि के पैर देश की जनता के आन्दोलन के बीच इस प्रकार जमे हुए हों, उससे सर्वदा प्रगति की शक्तियों को सहयोग मिलता रहेगा, इसमें संदेह नहीं होना चाहिए । कम से कम उसे अपने शब्दों को तो पूरा करना है ही, 'साहित्य इतिहास की बांदी नहीं, बल्कि उसका सहायक है' ।"[7]

अस्तु ! काव्य के लगभग सभी उपादानों के सहज एवं स्वाभाविक रीति के व्यवहार से युक्त दिनकर का काव्य भावों की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, कला की दृष्टि से भी खड़ी बोली हिंदी का एक श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ बन गया है । हिंदी के आधुनिकता मंडित काव्यों में 'कुरुक्षेत्र' का अपना विशिष्ट महत्व है ।

संदर्भ:

1. दिनकर की काव्य चेतना : पुनर्मूल्यांकन- खगेन्द्र ठाकुर, तद्भव, अंक-17, जनवरी 2008, पृष्ठ-19
2. दिनकर की काव्य चेतना : पुनर्मूल्यांकन- खगेन्द्र ठाकुर, तद्भव, अंक-17, जनवरी 2008, पृष्ठ-17-18
3. लोक दृष्टि और हिंदी साहित्य- चन्द्रबली सिंह, पृष्ठ-68, पीपुल्स लिटरेसी 517, मटिया महल, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1986
4. लोक दृष्टि और हिंदी साहित्य- चन्द्रबली सिंह, पृष्ठ-68, पीपुल्स लिटरेसी 517, मटिया महल, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1986
5. राष्ट्रवाद, नया मनुष्य और दिनकर- शम्भुनाथ, प्रगतिशील वसुधा, अंक: 1 अप्रैल-जून 2008
6. लोक दृष्टि और हिंदी साहित्य- चन्द्रबली सिंह, पृष्ठ-71, पीपुल्स लिटरेसी 517, मटिया महल, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1986
7. लोक दृष्टि और हिंदी साहित्य- चन्द्रबली सिंह, पृष्ठ-71, पीपुल्स लिटरेसी 517, मटिया महल, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1986